नियमसार, २६० कलश। कलश है। गाथा का अर्थ हो गया है।

कश्चिन्मुनिः सततनिर्मलधर्मशुक्ल-
ध्यानामृते समरसे खलु वर्ततेऽसौ।

ताभ्यां विहीनमुनिको बहिरात्मकोऽयं
पूर्वोक्त-योगिन-महं शरणं प्रपद्ये ।।२६०।।

श्लोकार्थ :- कोई मुनि सतत-निर्मल धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी... लो! शुक्लध्यान भी लिया। पंचम काल में। अन्तर निर्मल आनन्दस्वरूप भगवान, वह अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का समूह-पिण्ड है। उसमें एकाग्रता, **सतत-निर्मल...** निरन्तर उसमें एकाग्रता का रहना, वह **धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी समरस में...** है। वह धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूपी अमृतरूपी समरस है। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई मुनि ने लिखा, ऐसा कोई मुनि नहीं होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि न होवे तो मुनि नहीं। इस अनुसार न होवे तो मुनि नहीं परन्तु व्यक्ति का अपने... वह कहेंगे स्वयं।

कोई मुनि सतत-निर्मल धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी... अमृत। आहाहा! अमृत का सागर प्रभु, उसे जो अमृत को पीता है, अन्दर में एकाग्र ध्यान करके अमृतरूपी अमृत को जो पीता है, वह **समरस में सचमुच वर्तता है;...** वह वीतरागभाव में वास्तव में वर्तता है अर्थात् कि उसे विकल्प नहीं है। आहाहा! अन्तर के या बाह्य के विकल्प उसे नहीं है। आहाहा! जिसे अन्तर में **ध्यानामृतरूपी...** अन्तर के ध्यानरूपी अमृत... आहाहा! वह जिसने पिया और अमृत जिसे प्राप्त हुआ, वह **समरस में सचमुच वर्तता है;...** अर्थात् कि वह तो वीतरागभाव में वर्तता है, वह विकल्प में नहीं वर्तता। आहाहा! यह मुनि! कठिन काम है, भाई! मुनिपना किसे कहना, अभी इसकी खबर नहीं होती और जिसे-जिसे मानते हैं। आहाहा!

अन्तर में आत्मा विकल्परहित पूर्णानन्दस्वरूप, उसका जिसे अन्तरध्यान है, अमृत का स्वाद है, भले शुक्लध्यान भी लिया है, उत्कृष्ट बात ली है, अमृत के स्वाद में जो अन्दर स्थित है, वह समरसभाववाला है अर्थात् विकल्परहित वीतरागभाववाला है, ऐसा कहना है। आहाहा! वह वीतरागभाववाला है, वह मुनि है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम और वह कुछ मुनिपना नहीं है, वह समरस नहीं है। वह तो विषमरस है। आहाहा! कितनों को तो ऐसा सुनने को मिला भी न हो। आहाहा! यह क्या मुनिपना! आहाहा!

अन्तर आनन्द का नाथ, परमात्मस्वरूप के सन्मुख होकर उसके ध्यान में अमृत के रस का वेदन (करना), उसे यहाँ समरस कहा है। उसे यहाँ विकल्प रहित, भले अन्तर या बाह्य का शुभ-अशुभ विकल्प है, वह विषमभाव है। चाहे तो आत्मा में देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प या द्रव्य-गुण-पर्याय का विकल्प, तीन। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन का विकल्प भी विषमभाव है। आहाहा! ऐसा है। यह तो इतने और पुण्य इतना बढ़ रहा, साथ आया, नहीं तो ऐसी बात सुनने खड़ा न रहे। यह क्या कहते हैं? हमसे कुछ किया नहीं जा सकता, ऐसी बात? किया जा सकता है, यह बात की बात नहीं। आहाहा!

यहाँ तो सत् प्रभु सच्चिदानन्द अमृत का सागर अनादि-अनन्त भगवान आत्मा के सन्मुख में, उसके ध्यान में उसका अमृत पीवे, उसे समरसता अर्थात् यहाँ कहने का आशय तो यह है कि उसे विकल्प नहीं होता, इसलिए उसे वीतरागभाव होता है। है न? **समरस में सचमुच वर्तता है;...** वह वीतरागभाव में वर्तता है। पंचम काल के मुनि, पंचम काल के प्राणी को सुनाते हैं। कोई कहे कि यह बात तो चौथे काल (वाले) के लिये है। आहाहा! मुनिपना तो अलौकिक बात है, भाई! आहाहा!

(वह अन्तरात्मा है;)... अभी तो साधक है न? वह अन्तरात्मा है। आहा! और **इन दो ध्यानों से रहित...** अन्तर के आनन्द अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु, उसके अमृत के स्वाद से रहित... आहाहा! **तुच्छ मुनि...** लो, ऐसा कहा। मुनि ने स्वयं कहा। आहाहा! **दो ध्यानों से रहित तुच्छ...** अन्तर में ध्यान से रहित। आहाहा! पूरे दिन विकल्प ही किया करता है, कहते हैं। आहाहा! यह विकल्प है, वह तो राग है। वह कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा! मुनिपना तो वीतरागभाव से पंच परमेष्ठी में मुनिपना सम्मिलित है। पंच परमेष्ठी वीतरागभाव से है। उसे-वीतरागभाव को यहाँ समरस कहा है। परन्तु किस प्रकार से?

सतत-निर्मल धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी समरस में... आहाहा! निरन्तर सतत-अन्तर पड़े बिना आत्मा के अमृत की धारा, अमृत की धारा बहे, ऐसी जो वीतरागता, वह वास्तव में मुनि है। आहाहा! अब यहाँ तो इसने सुना हो कि सत्ताईस गुण पालो तो मुनिपना। श्वेताम्बर में ऐसा है न? सत्ताईस गुण। इसमें-दिगम्बर में अट्ठाईस गुण हैं। अट्ठाईस विकल्प। आहा! वह तो शुद्ध परिणति धर्म की अन्तर में हो, उसे ऐसा विकल्प व्यवहार होता है, उसका वर्णन है। परन्तु जहाँ शुद्ध परिणति ही नहीं, अन्तर के आनन्द के स्वाद

का जहाँ अभाव है, उसके व्यवहार को तो व्यवहार भी नहीं कहा जाता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है जरा। व्यवहार तो निश्चय होवे तो व्यवहार कहा जाता है। निश्चय आत्मा के...

आत्मा अर्थात् क्या? अकेला अमृत का सागर, शान्ति का सागर, सुख का महासागर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसकी ओर की जो एकाग्रता, उसका नाम यहाँ धर्मध्यान और शुक्लध्यान है अर्थात् समरस वीतरागभाव कहा जाता है। आहाहा! यह तो वीतरागभाव को ही धर्मध्यान कहा गया है, लो! शुक्लध्यान तो ठीक, वह तो कहते हैं परन्तु यहाँ तो धर्मध्यान भी वीतरागभाव (स्वरूप है)। आहाहा!

इन दो ध्यानों से रहित... जिसे इस अमृत के सागर का प्रपात बहता है प्रभु अन्दर, उसके अनुभव से रहित... आहाहा! जो मुनि **तुच्छ मुनि (वह) बहिरात्मा है।** लो! यह दो ध्यान से रहित, ऐसा कहा। पंच महाव्रतरहित और पंच महाव्रत में दोष लगाता है, अमुक के लिये, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! जिसमें पूरे संसार का अभाव है और पूर्ण आनन्द, ज्ञान से पूर्णता भरी हुई है। आहाहा! जिसमें पूर्ण वीतरागता, पूर्ण शान्ति, पूर्ण निर्विकल्पता पूर्ण भरी है, उसका जिसे वेदन है, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। इसके अतिरिक्त के तुच्छ मुनि अकेले विकल्प में ही वर्तते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प (मात्र है) और वस्तु अन्तर में नहीं है। आहाहा!

तुच्छ मुनि (वह) बहिरात्मा है। वह बहिरात्मा है। आहाहा! कहो, ऐसा सुना था कभी? आहाहा! ऐसी बात है। अस्थिरता का राग हो, वह अलग वस्तु है। यह अन्तर्मुख आनन्द का ध्यान और आनन्द की अनुभवदशा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर परमात्मा, उसका एक नमूना-अंश अन्तर के अमृत के स्वाद का (आवे), उसमें रहे हुए निर्विकल्प कहकर, वीतरागभाव कहकर उसे सच्चा मुनि कहा गया है। इन दो ध्यान से रहित भले पंच महाव्रत पालता हो... आहाहा! भले समिति, गुप्ति आदि अट्ठाईस मूलगुण हो परन्तु अन्तरात्मा का स्पर्श नहीं, अमृत के सागर को जिसने देखा नहीं, देखा नहीं, वह बहिरात्मा है। बहिरात्मा है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़ती है।

दो ध्यानों से रहित तुच्छ मुनि (वह) बहिरात्मा है। मैं... अब स्वयं मुनि कहते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं) **मैं पूर्वोक्त (समरसी) योगी की शरण लेता हूँ।** अर्थात् कि मैं समरसी में हूँ। आहाहा! **मैं पूर्वोक्त (समरसी)...** समरसी अर्थात् वीतरागभाव

में जो है, जिसे विकल्प की गन्ध नहीं, ऐसे मुनि की शरण में मैं हूँ। ऐसे **योगी की शरण लेता हूँ।** आहाहा! यह पंचम काल की बात होगी? कोई ऐसा कहते हैं कि ऐसी बात तो चौथे काल की है। आहाहा! नियमसार मुनि स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये, पंचम काल में स्वयं के लिये बनाया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल में हुए हैं। भगवान के बाद ५००-६०० वर्ष में (हुए हैं)। उसमें से यह है और स्वयं ने स्वयं के लिये बनाया है। आहाहा! अकेले आनन्द के झरने बहते हैं। आहाहा!

श्लोक-२६१

किञ्च केवलं शुद्धनिश्चयनयस्वरूपमुच्यते ह्न

(अनुष्टुप्)

बहिरात्मान्तरात्मेति विकल्पः कुधियामयम्।
सुधियां न समस्त्येष सन्सार-रमणी-प्रियः।।२६१।।

और (इस १५१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज द्वारा श्लोक द्वारा) केवल शुद्धनिश्चयनय का स्वरूप कहा जाता हैः—

(वीरछन्द)

बहिरात्मा अरु अन्तरात्मा यह विकल्प दुर्बुद्धि करें।
भव-रमणी को प्रिय विकल्प यह नहिं सुबुद्धिजन कभी करें॥२६१॥

[श्लोकार्थः] (शुद्ध आत्मतत्त्व में) बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसा यह विकल्प कुबुद्धियों को होता है; संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा यह विकल्प, सुबुद्धियों को नहीं होता॥२६१॥

श्लोक - २६१ पर प्रवचन

और (इस १५१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज द्वारा श्लोक द्वारा) केवल शुद्धनिश्चयनय का स्वरूप कहा जाता हैः—

२६१ (श्लोक)

बहिरात्मान्तरात्मेति विकल्पः कुधियामयम्।
सुधियां न समस्त्येष सन्सार-रमणी-प्रियः।।२६१।।

श्लोकार्थः आहाहा! **(शुद्ध आत्मतत्त्व में) बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसा यह विकल्प कुबुद्धियों को होता है;...** आहाहा! बहिरात्मा और अन्तरात्मा के विकल्प में वर्ते, वह कुबुद्धि है। आहाहा! यहाँ तो वर्ते, वह विकल्प ऐसा होता है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! ऐसा भेद करते हैं। अन्तरात्मा और बहिरात्मा, ऐसे दो भेद डालने जाता है, वहाँ अकेला अन्दर ध्यान नहीं रहता। आहाहा! अन्तरात्मा यह और बहिरात्मा यह, ऐसा करने जाए, वहाँ विकल्प टूटता नहीं। वहाँ विकल्प / राग रहता है, इसलिए कहते हैं कि **(शुद्ध आत्मतत्त्व में)...** अकेला जहाँ शुद्ध चैतन्य प्रभु निर्मलानन्द प्रभु आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहाहा! यह **बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसा यह विकल्प...** आहाहा! क्योंकि उसका बहिरात्मा के ऊपर लक्ष्य गया। अन्तरात्मा और बहिरात्मा, ऐसा भेद करने जाता है, वहाँ उसका लक्ष्य अकेला विकल्प के ऊपर गया। आहाहा!

शुद्ध आत्मा एकरूप स्वरूप परमानन्दमूर्ति, उस एक स्वरूप में बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसे दो भेद डालने जाता है, ऐसा यह विकल्प कुबुद्धियों को होता है। आहाहा! कहाँ तक ले गये! अमुक करे और अमुक करे, वह तो एक ओर रह गया, परन्तु यहाँ यह तत्त्व जो है, एकरूप स्वरूप, परमात्मस्वरूप ही चिदानन्द है, उसमें—शुद्धात्मा में दो भेद डालना कि यह अन्तरात्मा ऐसा और बहिरात्मा यह... आहाहा! ऐसा जो विकल्प है, वह कुबुद्धि को है। कठिन बात है। संसार के कर्तव्य तो एक ओर रह गये। आहाहा! शुभभाव के कर्तव्य भी एक ओर रह गया।

ऐसा जो शुभभाव कि यह आत्मा अन्तरात्मा इसे कहते हैं और बहिरात्मा इसे कहते हैं, ऐसा जो विकल्प में आया है, वह कुबुद्धि है। एकरूप वस्तु में दो प्रकार के विकल्प उठाता है, वह कुबुद्धि है—ऐसा कहते हैं। वस्तु एकरूप है, उसमें यह अन्तरात्मा एक समय की पर्याय, वह पर्याय है और बहिरात्मा, वह भी विकल्प की पर्याय है। आहाहा! कठिन विषय है, भाई! पाठ ही है, हों! यह। है न? **झाण-विहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि।** यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। **जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो**

सो वि अंतरंगप्पा। धर्म (ध्यान) और शुक्लध्यानरूप परिणमित हुआ है... आहाहा! वह अन्तरात्मा है और **झाण-विहीणो** दो ध्यानों में से अन्दर का एक भी ध्यान नहीं होता, वह **विहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि।** बहिरात्मा है, ऐसा तू जान। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं कहा है। गाथा में है। टीकाकार ने ही कहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहने का आशय तो ऐसा है कि एकरूप स्वरूप है, उसमें भेद डालकर विकल्प उठावे... आहाहा! वह कुबुद्धि है। अभेद में भेद उत्पन्न करे और माने, (वह कुबुद्धि है)। आहाहा! यह कठिन बात है। अन्तिम में अन्तिम यह है। आहा!

मुमुक्षु : तीन भेद डाले द्रव्य-गुण-पर्याय के...

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भेद किये। दो भेद किये, वह कुबुद्धि है। वस्तु त्रिकाल एकरूप है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यस्वरूप एकरूप, त्रिकाल एकरूप वस्तु है। ऐसे शुद्धात्मा में परमानन्द की मूर्ति वीतरागमूर्ति में दो भेद करना, वह विकल्प है और वस्तु वीतरागस्वरूप है, इसलिए विकल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! पहले सुनना कठिन पड़े। एकरूप में दो रूप का भेद डालकर विकल्प करे, वह कुबुद्धि है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! देवचन्दजी! आहाहा! यह राग करे और राग को अपना माने, वह तो मिथ्यात्व है, वह तो स्थूल बात है। आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा अन्तर में एकरूप चिदानन्द अनादि-अनन्त, सच्चिदानन्दस्वरूप अमृत का सागर एकरूप, एक स्वभाव, एक स्वरूप है। उसमें दो भेद डाले कि यह अन्तरात्मा की पर्याय और यह बहिरात्मा, वह विकल्प है, वह कुबुद्धि है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बात है। बात थी कब? आहाहा! अन्तिम में अन्तिम तत्त्व यह है।

झाण-विहीणो—ऐसा कहा न? यह पहले आ गया है न, कि '**अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा**' अन्तरात्मा और बहिरात्मा, इसमें दो विकल्प में वर्ते, (वह) बहिरात्मा है। १५० में, १५० गाथा में कहा है। अन्तर और बहिर्, ऐसे विकल्प में वर्ते, वह बहिरात्मा है। '**जप्पेसु जो ण वट्टइ**' विकल्प में न वर्ते तो अन्तरात्मा है। आहाहा! विकल्प आता है, परन्तु उसमें नहीं वर्तता। आहाहा! जानने में वर्तता है, वह विकल्प में नहीं वर्तता। विकल्प में वर्तता है, वह स्वरूप में नहीं वर्तता। आहाहा! ऐसी बात है। यह बात पहले कह

गये, १५० गाथा में कह गये हैं। अन्तर-बहिर् दो भेद डाले, यह तो पहले कह गये हैं और यह विशेष स्पष्ट करते हैं। ध्यानवाला है, वह मुनि है और ध्यानरहित है, वह बहिरात्मा है – ऐसा अब स्पष्ट कर दिया। आहाहा! आया?

(शुद्ध आत्मतत्त्व में)... वजन यहाँ है। शुद्ध आत्मतत्त्व एकरूप है उसमें। शुद्ध आत्मतत्त्व अखण्डानन्द अभेद अमृतस्वरूप एकरूप है, उसमें-एक में दो भेद डालता है... आहाहा! यहाँ तो अभी शुभ से छूटने का निषेध करते हैं। एकान्त है। शुभ से शुद्ध होता है, शुभ से शुद्ध होता है और बहुत जगह ऐसा कथन भी आता है। शुभ होता है, उससे रहित हुआ है; इसलिए शुभ में आरोप देते हैं। ऐसी बात है। शुभभाव से छूटकर शुद्ध का अनुभव हुआ, वहाँ शुभ में साधक का आरोप दिया। निश्चय साधक हुआ, तब व्यवहार साधक का आरोप दिया है। अब उसे उससे होता है, ऐसा मान बैठता है। आहाहा!

यहाँ तो एकरूप में दो रूप का विकल्प करे... क्या कहा? देखो! **(शुद्ध आत्मतत्त्व में)...** शुद्ध आत्मतत्त्व में अर्थात् एकरूप तत्त्व में। आहाहा! दूसरे विकल्प तो एक ओर रहे—लिखने के, बोलने के, समझाने के—वे तो सब विकल्प हैं। आहाहा! उनमें वर्ते, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि एकरूप में दोपने में वर्ते... आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इतने विकल्प में कुबुद्धिवाला कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि कहा। एक में दो भेद डाले क्यों? एकरूप चैतन्य है, उसमें दो भेद डाले तो विकल्प आया और विकल्प में वर्ते, वह तो मिथ्यादृष्टि है। चिमनभाई! ऐसा कहीं सुना नहीं था, ऐसा यह है। था कहाँ? आहाहा!

बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसा यह विकल्प कुबुद्धियों को होता है;... आहाहा! अन्तिम में अन्तिम बातें (की है)। १५० और १५१ गाथा। १५० में भी ऐसा कहा न? बहिरात्मा और अन्तरात्मा में वर्ते। दो प्रकार के जल्प होकर। अन्तरात्मा और बहिरात्मा में जपे। जल्प अर्थात् विकल्प में वर्ते। दोपने में विकल्परूप वर्ते, वह बहिरात्मा। कहा न इसमें? आहाहा! यहाँ कहते हैं, एक में दोपने का भाग डाले, है एकरूप वस्तु, उसमें दो भाग डाले कि यह अन्तरात्मा और यह बहिरात्मा... आहाहा! और उसमें वर्ते। बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसा विकल्प कुबुद्धि को होता है। उसका अर्थ यहाँ वर्ते (किया है)।

संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा... संसार में भटकने की प्रीतिवाला **ऐसा यह विकल्प...** आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकनेरूपी प्रिय स्त्री... आहाहा! वह रमणी -संसाररूपी रमणी, आहाहा! यह विकल्प है, वह संसाररूपी रमणी है। आहाहा! आनन्द के नाथ को, वेदन को भूलकर दो भाव करके वहाँ वर्ता करे तो वह **संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा यह विकल्प...** ऐसा यह राग, ऐसी यह वृत्ति का उत्थान **सुबुद्धियों को नहीं होता।** आहाहा! ढाई लाईन में तो...

इस १५० और १५१ में निश्चय आवश्यक की बात है न! निश्चय आवश्यक का अधिकार है न? सत्य-अवश्य का यह है। दो भेद डालना, वह आवश्यक नहीं है, कहते हैं। आहाहा! दूसरा आवश्यक माने, वह स्वतन्त्र है। आहाहा! परन्तु एक आत्मस्वरूप से विराजमान प्रभु अनादि-अनन्त सत्तासहित, आनन्दसत्ता जिसकी, उससे विरुद्ध के दो विकल्प उठावे : अन्तरात्मा और बहिरात्मा विकल्प (उठावे), वह कुबुद्धि है। आहाहा! ऐसा तो सुनना कठिन पड़ता है। घीया! कहीं मिले नहीं। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी में तो नहीं परन्तु अभी दिगम्बर में कहाँ है? गड़बड़ की है। आहाहा! कठिन बात है, उन्हें दुःख तो होगा न, बापू! जो विकल्प उठे, वह दुःखी हैं न! उस दुःख के जले हुए का अनादर करना, तिरस्कार करना यह नहीं हो सकता, वह भी मिटकर परमात्मा होओ। आहाहा! ऐसी विपरीत बुद्धि मिटकर भी जैसा स्वरूप है, वैसा होओ—ऐसी भावना धर्मी को होती है। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में कहा न! द्रव्यसंग्रह में कहा था न! अवायवीचार। धर्मी जीव विचार करता है, उसमें यह आता है। प्रत्येक प्राणी, कोई भी प्राणी दुःखी न होओ। तुम प्रभु से विरुद्ध करोगे, प्रभु! तो तुझे दुःख होगा। आहाहा! और उस दुःख की व्याख्या तुम्हें आकुलता सही नहीं जाए और उसी और उसी में उलझकर मर जाएगा, बापू! आहाहा! अनादि काल से वास्तविक तत्त्व में से हटकर पुण्य और पाप के विकल्प में तो रहा परन्तु यहाँ तो अन्तरात्मा और बहिरात्मा भेद में जो रहे... आहाहा! उसके विकल्प में जो वर्ता करे। आहाहा! स्वरूप का ध्यान तो नहीं, आनन्द का अन्दर जो स्वाद चाहिए, वह तो है नहीं और ऐसा विकल्प उठावे कि बहिरात्मा और अन्तरात्मा। कहते हैं कि वह तो मिथ्यादृष्टि कुबुद्धि है। आहाहा! सत्य ऐसा है। कठोर लगे या जरा कठिन लगे परन्तु सर्वज्ञ

त्रिलोकनाथ परमात्मा का वीतराग सत्य तो ऐसा है। वीतरागी सत्य तो यह है। आहाहा! यह सुनकर उकताहट नहीं लाना चाहिए कि इतना अधिक कठिन! ऐसा नहीं लाना चाहिए। परन्तु प्रभु! तेरी महत्ता इतनी अधिक है कि वह महत्ता एकरूप में दो रूप उठाता है, वह दुःख है, उसे मिटाते हैं। आहाहा! प्रभु! तू एकरूप, आनन्दरूप है न! समता का घर, वीतराग का घर है न! आहाहा! उसमें एकरूप में दो रूपता उठाने से, बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसी दो बात उठाने से, प्रभु! तुझे दुःख होता है। तू भले विचारता नहीं परन्तु प्रभु! उसमें तुझे दुःख होता है। उस दुःख को मिटाने के लिये यह बात करते हैं। उस दुःख में तू रहे, उसके लिये है यह? आहाहा! इसलिए स्वयं ऐसा कहते हैं न? आहाहा! पहले में कहा न? मैं तो ऐसे योगी की शरण ग्रहण करता हूँ। जो रागरहित, भेदरहित है, उसकी शरण ग्रहण करता हूँ। आहाहा! पहले श्लोक में कहा २६०, २६१ में ऐसा लिया। आहाहा!

संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा यह विकल्प... आहाहा! प्रभु! प्रभु! प्रभु! परमात्मास्वरूप एकरूप है, उसमें दो रूपता उठाता है – यह अन्तरात्मा और बहिरात्मा। स्वयं परमात्मा तो है ही। आहाहा! उसमें अन्तरात्मा और बहिरात्मा का विकल्प (उठावे), वह कुबुद्धि है। आहाहा! कितनों ने तो जिन्दगी में यह सुना नहीं होगा। यह अन्तिम में अन्तिम बात है। यह दो गाथाएँ जब से देखी, तब से पहले से कहते हैं। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही यह है।

एकरूप ऐसा भगवान आत्मा वह वस्तु है, अस्ति है, सत्ता है, स्वभाव है, मौजूदगी चीज़ है। अनन्त गुण का धनी एकरूप रहे, अनन्त आनन्द और अमृत का सागर नाथ एकरूप रहे, ऐसा उसका त्रिकाली स्वरूप है। उन सबका स्वरूप ऐसा ही है, प्रभु! उसमें से निकलकर ऐसे दो भेद डालेगा तो प्रभु! तू दुःखी होगा। उसे कुबुद्धि कहा न? आहाहा! तू दुःखी होगा, तुझे दुःख होगा और दुःख होगा, इसलिए संसार आयेगा भटकने का। परिभ्रमण आयेगा। आहाहा! इतनी करुणा से यह बात की है। आहाहा!

कहते हैं कि अन्तरात्मा और बहिरात्मा, ऐसा एकरूप चैतन्य में भेद, वह **संसाररूपी रमणी को प्रिय...** अर्थात् भटकने के लिये है। आहाहा! यह संसार में भटकने के लिये विकल्प है। प्रभु! प्रभु! ऐसी बात! आहाहा! यहाँ तो कितने विकल्प के घोटाले उठावे तो भी उसमें लाभ माने। आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक आवे तो भी लाभ नहीं। आहाहा!

संसार में भी होता है राजा, महाराजा सम्यग्दृष्टि (होते हैं), उसके प्रमाण में उन्हें आर्तध्यान और रौद्रध्यान भी होता है, तथापि वे बहिरात्मा नहीं हैं। आहाहा! क्योंकि उनकी दृष्टि में अन्तर आत्मा तैरता है। त्रिकाली आत्मा-परमात्मा है, वह तैरता है। विकल्प होता है, राग होता है, वह क्रिया भी राग की होती है, तथापि उसका जाननेवाला रहकर स्वरूप में रमने की स्थिति उसके घर में है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह क्या कहना है?

समकिती गृहस्थाश्रम में इस प्रकार विकल्प में आवे, वह कुबुद्धि नहीं है। वह भेद करता नहीं। वस्तु की तो अभेद दृष्टि है। वस्तु त्रिकाली है, वह तो अभेद है, उसमें बिल्कुल भेद नहीं करता। रागादि आवे, आर्तध्यान आवे, रौद्रध्यान आवे... आहाहा! तथापि वह कुबुद्धि नहीं है। आहाहा! रौद्रध्यान आवे तो भी कुबुद्धि नहीं है और यहाँ एक में दो भाग डालकर वहाँ वर्ते तो वह कुबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गुण और गुणी, ऐसे दो देखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी विकल्प है। एक में दो भेद डालना, वह विकल्प है और विकल्प में वर्ते तो मिथ्यादृष्टि है। यह तो पहले कहा है। पहले कह गये न? १५० में '**अन्तरबाहिरजप्पे जो वट्टइ**' अन्तरात्मा और बहिरात्मा, ऐसे जो विकल्प में वर्ते... आहाहा! '**सो हवेइ बहिरप्पा**' वह बहिरात्मा है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! १५० और १५१ (गाथा में)... आहाहा! अलौकिक बातें हैं। यहाँ तो दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, बापू! यह सब तो विकल्प है। आहाहा! शास्त्र बनाओ, यह सब विकल्प का जाल है। आहाहा!

यहाँ तो एकरूप में दो भाग करने पर भी विकल्प है। पर्याय के दो भेद करने पर। द्रव्यवस्तु एकरूप है। द्रव्य जो है, वह भगवान परमात्मा एकरूप है। उसमें जो परमात्मा के अतिरिक्त अन्तरात्मा और बहिरात्मा का दो भेद का विकल्प उठाता है, वह भी कुबुद्धि और अज्ञान है। आहाहा! ऐसी बात है। है या नहीं इसमें? ऐसा सुना है कब वहाँ?

मुमुक्षु : सुनानेवाले कब थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसी बात रह गयी, बापू! ओहोहो!

मुमुक्षु : तत्त्व के चिन्तन का विकल्प?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प है। चिन्तवन करना, वह विकल्प है। चिन्तवन के कथन करनेवाला दो है। एक आत्मा का ध्यान एकाग्रता, उसे चिन्तवन कहते हैं, अन्दर ध्यान में एकाग्रता उसे चिन्तन कहते हैं और एक ऐसा आत्मा है... ऐसा है—ऐसा विकल्प, उसे भी चिन्तवन कहते हैं। शास्त्र में चिन्तवन के कथन दो प्रकार से हैं। आहाहा! अरे रे!

मुमुक्षु : कठिन लगता है यह सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है, भाई! बापू! यह तो वस्तु ऐसी है। आहाहा! ओहो! चौरासी के अवतार। बाकी त्याग किया, महाव्रत पालन किये, सब अनन्त बार किया। आहाहा! और वह मिथ्यात्व किसे कहना, यह समझे बिना शल्य अन्दर गहरी रह जाती है और मानता है कि यह समकित है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यह दो कलश १५० और १५१ यह तो निश्चय आवश्यक है न, यहाँ अवश्य का कहते हैं। एक में दो भाग डालने की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! प्रभु चैतन्यपिण्ड अमृत का सागर एकरूप है, उसमें उसे एक में दो भाग डालना, वह कुबुद्धि है। आहाहा! एक में अनेकता को डालना, वह तेरी भूल है। आहाहा! ऐसी बात देवचन्दजी कहाँ से? कहते-कहते लोग कहे एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। प्रभु! प्रभु! प्रभु! तेरे हित की बात है। अन्तर में... आहाहा! राग आवे परन्तु उसकी मर्यादा आवे। आहाहा! गजब काम किया है। यह तो पद्मप्रभमलधारिदेव। अमृतचन्द्राचार्य के पश्चात् हुए हैं। वे भी ऐसा स्पष्ट रखकर जगत के समक्ष बात करते हैं। सभा के बीच में कहते हैं कि इस प्रकार है। आहाहा!

(शुद्ध आत्मतत्त्व में)... अर्थात् एक ही वस्तु, एकरूप वस्तु में। **बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसा यह...** भेद। भेद कहो या विकल्प कहो। **विकल्प कुबुद्धियों को होता है;...** आहाहा! **संसाररूपी रमणी को प्रिय...** चार गति में भटकने की जिसको प्रियता है, ऐसा जो विकल्प। आहाहा! विकल्प का प्रेम है, उसे चार गति में भटकने का प्रेम है। **संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा यह विकल्प...** इस राग का जिसे रस है... आहाहा! उसे चार गति में भटकने का रस है। आहाहा! राग हो, राग आवे।

भरत चक्रवर्ती एकावतारी क्षायिक समकिती। वे भगवान को मोक्ष जाते देखा तो आँख में आँसू की धारा बहे। अरे! यह भरतक्षेत्र का सूर्य अस्त हो गया। भरत का सूर्य आज

अस्त हुआ। यह (बाहर का) सूर्य तो उगता है और अस्त होता है परन्तु यह तो चैतन्यसूर्य, केवलज्ञान सूर्य आज अस्त हो गया। आँसू की धारा बहती है। है समकिती, क्षायिक समकिती। आहाहा! इन्द्र कहता है कि भाई! तुझे तो इस भव में मोक्ष जाना है और हमारे तो अभी एकाध भव है। (भरत कहते हैं) खबर है, सब खबर है। बापू! राग आता है, इसलिए यह स्थिति होती है। सब खबर है। इन्द्र, भरत को कहते हैं कि किसलिए रोते हो? भगवान मोक्ष पधारे हैं। सुन! इन्द्र को कहते हैं, सुन! मुझे सब खबर है परन्तु राग है, इसलिए यह होता है, यह जानता हूँ। मुझे राग की एकता नहीं है। राग और ज्ञायक इन दो को भिन्न ही जानता हूँ और इस भव में ही मुझे मोक्ष है। यह मेरी अन्तिम देह है, अब दूसरी देह है नहीं। आहाहा! वे भी रोते.. रोते.. (ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

मुमुक्षु : वे रोते-रोते भी तत्त्व को याद करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व को अन्दर (याद करते हैं)। अब आँख में से आँसू है तो भी अन्दर तत्त्व की दृष्टि है, वह हटी नहीं है। आहाहा! तत्त्व जो चैतन्य भगवान अन्दर है, उस भगवान को भूले नहीं। आहाहा! ऐसी बात तो अन्य को तो कठिन पड़ती है।

गाथा-१५२

पडिकमणपहुदिकिरियं कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विराग-चरिए समणो अब्भुट्ठिदो होदि।।१५२।।

प्रतिक्रमणप्रभृतिक्रियां कुर्वन् निश्चयस्य चारित्रम्।
तेन तु विराग-चरिते श्रमणोऽभ्युत्थितो भवति।।१५२।।

परमवीतरागचारित्रस्थितस्य परमतपोधनस्य स्वरूपमत्रोक्तम्।

यो हि विमुक्तैहिकव्यापारः साक्षादपुनर्भवकाङ्क्षी महामुमुक्षुः परित्यक्तसकलेन्द्रियव्यापारत्वान्निश्चयप्रतिक्रमणादिसत्क्रियां कुर्वन्नास्ते, तेन कारणेन स्वस्वरूपविश्रान्तिलक्षणे परमवीतरागचारित्रे स परमतपोधनस्तिष्ठति इति।

प्रतिक्रमण आदिक्रिया तथा चारित्रनिश्चय आचरे।
अतएव मुनि वह वीतराग-चारित्र में स्थिरता करे॥१५२॥

अन्वयार्थ : [प्रतिक्रमणप्रभृतिक्रियां] प्रतिक्रमणादि क्रिया को—[निश्चयस्य चारित्रम्] निश्चय के चारित्र को—[कुर्वन्] (निरन्तर) करता रहता है, [तेन तु] इसलिए [श्रमणः] वह श्रमण [विरागचरिते] वीतरागचारित्र में [अभ्युत्थितः भवति] आरूढ़ है।

टीका : यहाँ परम वीतरागचारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है।

जिसने ऐहिक व्यापार (सांसारिक कार्य) छोड़ दिया है, ऐसा जो साक्षात् अपुनर्भव का (मोक्ष का) अभिलाषी महामुमुक्षु सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से निश्चयप्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है (अर्थात् निरन्तर करता है), वह परम तपोधन उस कारण से निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण परम वीतराग-चारित्र में स्थित है (अर्थात् वह परम श्रमण, निश्चयप्रतिक्रमणादि निश्चयचारित्र में स्थित होने के कारण, जिसका लक्षण निज स्वरूप में विश्रान्ति है, ऐसे परमवीतरागचारित्र में स्थित है)।

गाथा - १५२ पर प्रवचन

अब १५२ गाथा।

पडिकमणपहुदिकिरियं कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विराग-चरिए समणो अब्भुट्ठिदो होदि।।१५२।।

प्रतिक्रमण आदिक्रिया तथा चारित्रनिश्चय आचरे।
अतएव मुनि वह वीतराग-चारित्र में स्थिरता करे॥१५२॥

टीका : आहाहा! **यहाँ परम वीतरागचारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है।** इस गाथा में। आहाहा! तप की व्याख्या ही पहले कही है न? पहले एक आता है न, शुरुआत में? १०९ पृष्ठ पर। तप की व्याख्या आती है। यह लोग अनशन, उनोदरी तप करते हैं न, वह तप नहीं। आहाहा! यह कहीं है अवश्य। तप की व्याख्या कहीं है। १०९ पृष्ठ पर है। बस, १०९ है। **परमस्वभावरूप परमात्मा में प्रतपन...** बस यह। **सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है...** यह अपवास करना और यह और वह सब तप नहीं है - ऐसा कहते हैं। १०९ पृष्ठ पर है। ख्याल था, परन्तु कहीं सब याद रहता है? देखो, नीचे है, यह। है? आहाहा!

अब **सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावरूप परमात्मा में प्रतपन,...** आहाहा! नीचे (अर्थ) है। सहज निश्चयनयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है। आहाहा! प्रतपन—अन्दर शुद्धि की वृद्धि, आनन्द की धारा विशेष बढ़े, उसे तप कहा जाता है। आहाहा! तप की ऐसी व्याख्या! अनशन-अपवास और (वह तो कहीं रह गया)। यहाँ यह कहा न, तप। **वह तप है...** ऐसा है न? है? **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहजनिश्चयचारित्र इस तप से होता है।** निश्चयचारित्र भी ऐसा तप हो, वहाँ होता है। आहाहा! व्याख्या तप की है, तो भी कहते हैं... आहाहा! ऐसा तप हो, उसे ऐसा चारित्र होता है। आहाहा! है?

सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावरूप परमात्मा में प्रतपन,... प्रतपन। प्र-तपन, अकेला तपन नहीं। **वह तप है, निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहजनिश्चयचारित्र**

इस तप से होता है। आहाहा! निश्चयचारित्र भी इस तप से होता है। अब ऐसी व्याख्या। १०९ पृष्ठ पर लिखा था। कहीं है। आहाहा!

अब यहाँ आवश्यक। १५२ (गाथा) **यहाँ परम वीतरागचारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है।** आहाहा! टीका है न? **जिसने ऐहिक व्यापार (सांसारिक कार्य) छोड़ दिया है...** आहाहा! **ऐसा जो साक्षात् अपुनर्भव का (मोक्ष का) अभिलाषी महामुमुक्षु...** आहाहा! **सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से निश्चयप्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है...** लो! आहाहा! ऐसा सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से निश्चय प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया। इसका नाम सत्क्रिया है। वह (राग की) क्रिया सत् नहीं, वह तो असत्क्रिया है। आहाहा! है? **परम वीतरागचारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है।** वही **(मोक्ष का) अभिलाषी महामुमुक्षु सकल इन्द्रिय व्यापार...** उससे रहित होकर सत्क्रिया करता हुआ स्थित है। अन्तर के आनन्द में रहता हुआ उस चारित्र में वह तप है। अन्तर में आनन्द में रहता हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करता हुआ, वह तप है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)